



वह तिथि जब निर्णय सुरक्षित रखा गया	वह तिथि जब निर्णय उद्धोषित किया गया	वह तिथि जब निर्णय वेबसाइट पर अपलोड किया गया	
		प्रवर्तनीय	पूर्ण
03.09.2025	27.11.2025	--	27.11.2025

प्रकाशनार्थ अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

निर्णय सुरक्षित रखने का दिनांक : 03.09.2025

निर्णय पारित करने का दिनांक : 27.11.2025

दाण्डिक अपील क्रमांक 89/2008

1- अरुण कुमार विश्वकर्मा, पिता दयाशंकर विश्वकर्मा, आयु लगभग 52 वर्ष, शाखा प्रबंधक, देना बैंक, लवन, तहसील बलौदाबाजार, जिला रायपुर (छ.ग.)। वर्तमान पता: A-10, कंचनजंगा स्टेट-2, रोहिणीपुरम, थाना सरस्वती नगर, रायपुर, जिला रायपुर, छ.ग.

... अपीलार्थी

विरुद्ध

1- छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा: लोकायुक्त, विशेष पुलिस स्थापना रायपुर, जिला रायपुर (छ.ग.)।

... प्रत्यर्थी (गण)

अपीलार्थी की ओर से	:	श्री शशि भूषण तिवारी, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी (गण)/ राज्य की ओर से	:	श्री आशीष शुक्ला, अतिरिक्त महाधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रजनी दुबे

सी.ए.वी. निर्णय

1. वर्तमान अपील दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374(2) के अधीन, विद्वान विशेष न्यायाधीश अधिनियम के अधीन एवं प्रथम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, रायपुर (छ.ग.) द्वारा विशेष दाण्डिक प्रकरण क्रमांक 01/2005 में दिनांक 27.12.2007 को पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के निर्णय के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करते हुए निम्नानुसार दण्डित किया है:-

<u>दोषसिद्धि</u>	<u>दण्डादेश</u>
भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7	1 वर्ष का सश्रम कारावास और 2000/- रुपये



के अधीन	अर्थदंड, तथा अर्थदंड के संदाय में व्यतिक्रम की दशा पर 6 माह का अतिरिक्त सश्रम कारावास।
भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) सहपठित धारा 13(2) के अधीन	1 वर्ष का सश्रम कारावास और 200/- रुपये अर्थदंड, तथा अर्थदंड के संदाय में व्यतिक्रम की दशा पर 6 माह का अतिरिक्त सश्रम कारावास। (दोनों सजाएं साथ-साथ चलेंगी)

2. अभियोजन के अनुसार, शिकायतकर्ता लखन लाल सेन (अ.सा.-3) ने देना बैंक, लवन शाखा से प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अधीन ₹60,000/- का ऋण प्राप्त किया था। स्वीकृत राशि में से शिकायतकर्ता को ₹30,000/- की प्रथम किस्त पहले ही प्राप्त हो चुकी थी। सुसंगत समय पर, अभियुक्त उक्त बैंक के शाखा प्रबंधक के रूप में पदस्थ था। अभियुक्त ने कथित तौर पर ऋण की किस्तें जारी करने के बदले ₹6,000/- की रिश्त की मांग की थी। शिकायतकर्ता पहले ही ₹5,000/- का भुगतान कर चुका था और दूसरी किस्त के लिए अभियुक्त ने कथित तौर पर ₹1,000/- की और मांग की और कहा कि भुगतान के बिना किस्त जारी नहीं की जाएगी। रिश्त देने के अनिच्छुक शिकायतकर्ता ने दिनांक 29.01.2003 को पुलिस अधीक्षक, विशेष पुलिस स्थापना, रायपुर को एक लिखित शिकायत (प्रदर्श पी/5) प्रस्तुत की। शिकायत निरीक्षक विश्वास चंद्राकर (अ.सा.-12) को पृष्ठांकित की गई और अपराध (प्रदर्श पी/69) पंजीबद्ध किया गया। दिनांक 30.01.2003 के लिए निर्धारित ट्रैप कार्यवाही के लिए दो पंच साक्षियों, रामानंद दिव्य (अ.सा.-4) और प्रसून कुमार शर्मा को आहूत किया गया।

दिनांक 30.01.2003 को, एसीबी कार्यालय में पंच साक्षियों के एकत्रित होने के बाद, वरिष्ठ अधिकारियों और कर्मचारियों के साथ एक ट्रैप दल बलौदा बाजार के लिए खाना हुई, जहाँ शिकायतकर्ता उनके साथ शामिल हो गया। ₹100/- के दस करेंसी नोटों (कुल ₹1,000/-) पर फेनोल्फथैलिन पाउडर लगाया गया, उनके नंबर दर्ज किए गए और प्रारंभिक प्रदर्शन किए गए। एक पूर्व-ट्रैप पंचनामा (प्रदर्श पी/6) तैयार किया गया। ट्रैप दल लगभग 19:10 बजे अभियुक्त के निवास पर पहुँची। शिकायतकर्ता घर के भीतर गया और कुछ ही देर बाद वापस आकर पूर्व-निर्धारित संकेत दिया। निरीक्षक खरे और रामानंद दिव्य (अ.सा.-4) ने घर में प्रवेश किया, अभियुक्त को पकड़ा और अपनी पहचान बताई। सामना होने पर, अभियुक्त घबरा गया और कहा कि धन बिस्तर से लिया जा सकता है जहाँ उसे रखा गया था। सोडियम-कार्बोनेट घोल में अभियुक्त के हाथ धोने पर घोल का रंग गुलाबी हो गया, जो फेनोल्फथैलिन के संपर्क को दर्शाता था। बिस्तर से दस पावडरयुक्त करेंसी नोट बरामद किए गए और उनके नंबर पूर्व-ट्रैप पंचनामे में दर्ज नंबरों से मेल खाते थे। चादर और नोटों की धुलाई का रंग भी गुलाबी हो गया। आवेदक के हाथों की धुलाई का परीक्षण भी सकारात्मक रहा। घोल, करेंसी नोट और अन्य संबंधित वस्तुओं को जब्त किया गया।



राजस्व निरीक्षक कन्हैया लाल साहू (अ.सा.-5) द्वारा घटनास्थल का मौका नक्शा तैयार किया गया। देना बैंक से शिकायतकर्ता की ऋण फाइल से संबंधित दस्तावेज जब्त किए गए। अभियुक्त का कथन अभिलिखित किया गया जिसमें उसने दावा किया कि प्राप्त राशि मार्जिन मनी थी। उसे गिरफ्तार किया गया और मौके पर ही जमानत पर रिहा कर दिया गया। एक पश्चातवर्ती-ट्रैप पंचनामा (प्रदर्श पी/12) तैयार किया गया और जब्त सामग्री को रासायनिक परीक्षण के लिए भेजा गया। न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला प्रतिवेदन सकारात्मक रूप में प्राप्त हुई। अभियोजन के लिए स्वीकृति (प्रदर्श पी-4) प्राप्त की गई, और विवेचना पूर्ण होने के पश्चात अभियुक्त के विरुद्ध अभियोग-पत्र प्रस्तुत किया गया। विद्वान विचारण न्यायालय ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और धारा 13(1)(घ) सहपठित 13(2) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप विरचित किए, जिससे अपीलार्थी ने इनकार किया और विचारण चाहा।

3. अभियुक्त/अपीलार्थी के दोष को साबित करने हेतु, अभियोजन ने 13 साक्षियों का परीक्षण किया। अभियुक्त/अपीलार्थी का कथन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित किया गया, जिसमें उसने समस्त अभियोगात्मक परिस्थितियों से इनकार किया, स्वयं को निर्दोष बताया और झूठा फँसाए जाने का आरोप लगाया। यद्यपि, उसने अपने बचाव में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया।

4. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों के उचित विवेचन के पश्चात, अभियोजन के प्रकरण को विश्वसनीय पाया और दिनांक 27.12.2007 के निर्णय द्वारा अपीलार्थी को दोषसिद्ध करते हुए दंडित किया, जैसा कि निर्णय के कण्डिका 1 में वर्णित है। अतः, यह अपील प्रस्तुत की गई है।

5. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष, दोषसिद्धि एवं दंडादेश, विधि के स्थापित सिद्धांतों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के विपरीत हैं, और इसलिए आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है। यह आगे तर्क दिया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय के निष्कर्ष साक्ष्यों के त्रुटिपूर्ण विवेचन और अंतर्वलित विधिक विवाद्यक पर अनुचित विचार के कारण दूषित है, जिसके परिणामस्वरूप न्याय का गंभीर हनन हुआ है।

यह तर्क किया गया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध निकाले गए निष्कर्ष अभिलेख पर मौजूद किसी भी विधिक, ठोस या विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं हैं, और वे केवल तथ्यों के त्रुटिपूर्ण विवेचन, निराधार संदेह और अनुमानों पर आधारित हैं। अपीलार्थी का तर्क है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और धारा 13(1)(घ) सहपठित धारा 13(2) के अधीन दंडनीय अपराधों का दोषसिद्ध करने में गंभीर त्रुटि की है।



अपीलार्थी का आगे यह तर्क है कि विद्वान विचारण न्यायालय इस तथ्य की विवेचना करने में असफल रहा कि कथित राशि की प्राप्ति के संबंध में अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को केवल संभाव्यता की प्रबलता के आधार पर साबित किया जाना आवश्यक था, न कि युक्तियुक्त संदेह से परे और यह कि उठाया गया बचाव उचित रूप से स्थापित हो चुका था। अतः, अपीलार्थी दोषमुक्ति का हकदार था। उन्होंने आगे व्यक्त किया कि आरोप विरचन में अनियमितताओं और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी के कथन अभिलिखित करने में हुई त्रुटियों ने अपीलार्थी के हितों को गंभीर क्षति पहुँचाई है, जिससे न्याय का हनन हुआ है।

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में, यह सविनय निवेदन है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि अवैध है, साक्ष्यों के भार के विपरीत है, और विधि के स्थापित सिद्धांतों के साथ असंगत है, इसलिए दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त किए जाने योग्य हैं।

इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा **दाण्डिक अपील क्रमांक 3030/1998 (बिनोदानंद झा विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य, अब छत्तीसगढ़)** में दिनांक 28.06.2024 को पारित निर्णय और **दाण्डिक अपील क्रमांक 2148/1999 (दत्तात्रेय मुखरीवाले विरुद्ध म.प्र. राज्य)** में दिनांक 21.07.2022 को पारित निर्णय का अवलंब लिया गया है।

6. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता आक्षेपित निर्णय का समर्थन करते हैं और यह तर्क देते हैं कि विद्वान विचारण न्यायालय ने मौखिक, दस्तावेजी और वैज्ञानिक साक्ष्यों का उचित रूप से विवेचन किया है। अभियोजन ने अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति, दोनों को स्पष्ट रूप से साबित किया है, जिसकी पुष्टि ट्रैप कार्यवाही, दूषित नोटों की बरामदगी और सकारात्मक न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला प्रतिवेदन से विधिवत होती है। यह तर्क किया गया है कि कथित तौर पर प्राप्त राशि को "मार्जिन मनी" बताने वाला अपीलार्थी का बचाव न तो विश्वसनीय है और न ही किसी सामग्री द्वारा समर्थित है, और इसे उचित रूप से खारिज किया गया है। आरोप विरचन या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कथन अभिलिखित करने में अपीलार्थी के प्रति कोई प्रतिकूल प्रभाव कारित नहीं हुआ है। विचारण न्यायालय के निष्कर्ष सुसंगत और ठोस साक्ष्यों पर आधारित हैं, और उनमें किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अतः, यह अपील खारिज किए जाने योग्य है।

7. पक्षकारों के अधिवक्तागण को सुना गया तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया गया।

8. विद्वान विचारण न्यायालय के अभिलेख से यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और धारा 13(1)(घ) सहपठित धारा 13(2) के अधीन आरोप विरचित



किए गए थे। अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों की विवेचना करने के पश्चात, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को उक्त अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया।

9. शिकायतकर्ता लखनलाल सेन (अ.सा.- 3) ने कथन किया कि उसने लोकायुक्त कार्यालय के समक्ष अभियुक्त के विरुद्ध एक शिकायत दर्ज कराई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि अभियुक्त ने उससे मार्जिन मनी के रूप में ₹5,000/- की मांग की थी। उसने आगे बताया कि अभियुक्त, जो बैंक प्रबंधक था, ने यह मांग की थी और उसकी शिकायत के आधार पर 30 तारीख को अभियुक्त को पकड़ा गया। उसने प्रदर्श पी/5 के माध्यम से शिकायत दर्ज की थी।

अपनी मुख्य परीक्षण में, उसने पूरी प्रक्रिया का विवरण दिया, जिसमें यह भी शामिल था कि उसने लोकायुक्त अधिकारियों को ₹1,000/- दिए थे। उसने आगे कथन किया कि प्रदर्श पी/6 के अनुसार प्रारंभिक मेमो तैयार किया गया था और मेमो के प्रत्येक पृष्ठ पर बिंदु A से A तक अंकित अपने हस्ताक्षरों को स्वीकार किया।

कण्डिका 6 में, उसने कथन किया कि वह लोकायुक्त कार्यालय के अधिकारियों के साथ अभियुक्त के घर पहुँचा और अभियुक्त को मार्जिन मनी के रूप में ₹1,000/- सौंप दिए, जिसे अभियुक्त ने स्वीकार कर अपने पास रख लिया। इसके पश्चात, ट्रैप दल ने अभियुक्त को पकड़ लिया। अभियोजन ने उसे पक्षद्रोही घोषित किया और उससे प्रतिपरीक्षण किया, जिसके दौरान उसने इस सुझाव को स्वीकार किया कि उसने अपने आवेदन (प्रदर्श पी/5) में सही लिखा था कि देना बैंक के बैंक प्रबंधक अरुण कुमार विश्वकर्मा ने उससे ₹6,000/- की रिश्त मांगी थी।

कण्डिका 25 में, उसने कथन किया कि जब वह रिपोर्ट दर्ज कराने गया था, तब उसे बताया गया था कि उसे 'मार्जिन मनी' के स्थान पर 'रिश्त' शब्द लिखना होगा, और इसीलिए उसने 'रिश्त' शब्द का प्रयोग किया।

आगे कण्डिका 26 में, उसने कथन किया कि जब उसने ऋण लेने के बारे में पूछताछ की थी, तब उसे सूचित किया गया था कि ₹60,000/- के ऋण के लिए आवश्यक मार्जिन लगभग ₹12,000/- था, जिसमें से शासन ₹7,500/- का भुगतान करेगी और शेष राशि का भुगतान उसे स्वयं करना होगा। कण्डिका 29 में, उसने कथन किया कि अभियुक्त ने कभी भी किसी रिश्त की राशि की मांग नहीं की थी और उसने उससे केवल मार्जिन मनी मांगी थी। उसने आगे कथन किया कि उसके पिता ने भी देना बैंक से ऋण लिया था, और जब वह उक्त ऋण के लिए आवेदन प्रस्तुत करने वाला था, तब उसके पिता ने पूर्व ऋण राशि का पुनर्भुगतान नहीं किया था।

10. वर्तमान प्रकरण में, अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने कथन के प्रश्न संख्या 98 के उत्तर में, बरामदगी और ट्रैप कार्यवाही को स्वीकार किया। उसने कथन किया कि शिकायतकर्ता ने ₹60,000/- का ऋण लिया था और मार्जिन मनी का भुगतान किशतों में किया जा रहा था। उसने आगे कथन किया कि उसने ₹2,000/- अपने पास रखे थे और उक्त राशि की रसीद



जारी की थी, तथा घटना के दिन शिकायतकर्ता ने उसे ₹1,000/- सौंपे थे। शिकायतकर्ता ने भी अपनी मुख्य परीक्षण और प्रतिपरीक्षण, दोनों में यह कथन किया कि अभियुक्त ने उससे मार्जिन मनी की मांग की थी।

11. बिनोदानंद झा (पूर्वोक्त) के प्रकरण में, इस न्यायालय के निष्कर्ष जो कण्डिका 11 से 17 में निहित हैं, विशेष रूप से सुसंगत हैं और उन्हें निम्नानुसार उद्धृत किया जाता है:-

"11. अवैध परितोषण के प्रकरण में, अपराध गठित करने के लिए तीन आवश्यक घटक होते हैं। वे हैं: (i) मांग, (ii) स्वीकृति और (iii) बरामदगी।

12. (2009) 3 एससीसी 779 (सी.एम. गिरीश बाबू विरुद्ध सी.बी.आई., कोचीन, केरल उच्च न्यायालय) के प्रकरण में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"18. सूरज मल विरुद्ध राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1979) 4 एससीसी 725 में, इस न्यायालय ने यह विचार अपनाया था कि (एससीसी पृष्ठ 727, कण्डिका 2) उन परिस्थितियों से अलग, जिनमें धन दिया गया है, मात्र पावडरयुक्त धन की बरामदगी अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है, विशेषकर जब प्रकरण में मुख्य साक्ष्य विश्वसनीय न हो। रिश्वत के भुगतान को साबित करने वाले किसी साक्ष्य के अभाव में या यह दिखाने के अभाव में कि अभियुक्त ने स्वेच्छा से उस धन को रिश्वत जानते हुए स्वीकार किया था, मात्र बरामदगी अपने आप में अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन के आरोपों को साबित नहीं कर सकती।"

13. आगे (2014) 13 एससीसी 55 (बी. जयराज विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य) के प्रकरण में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:

7. जहाँ तक धारा 7 के अधीन अपराध का संबंध है, यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि अवैध परितोषण की मांग उक्त अपराध के गठन हेतु अनिवार्य शर्त है। जब तक यह युक्तियुक्त संदेह से परे साबित न हो जाए कि अभियुक्त ने स्वेच्छा से धन को रिश्वत जानते हुए स्वीकार किया था, तब तक मात्र करेंसी नोटों की बरामदगी धारा 7 के अधीन अपराध गठित नहीं कर सकती। उपर्युक्त स्थिति को इस न्यायालय के कई निर्णयों में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है। उदाहरण के तौर पर सी.एम. शर्मा विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य, (2010) 15 एससीसी 1 और सी.एम. गिरीश बाबू विरुद्ध सी.बी.आई., (2009) 3 एससीसी 779 के निर्णयों का संदर्भ लिया जा सकता है।

8. वर्तमान प्रकरण में, जहाँ तक अभियुक्त द्वारा मांग किए जाने का संबंध है, शिकायतकर्ता ने अभियोजन के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है। अभियोजन ने उस समय उपस्थित किसी भी अन्य साक्षी का परीक्षण नहीं किया है जब शिकायतकर्ता द्वारा कथित रूप से अभियुक्त को धन सौंपा गया था, ताकि यह साबित किया जा सके कि यह



अभियुक्त द्वारा की गई किसी मांग के अनुसरण में था। जब शिकायतकर्ता ने स्वयं एलडब्लू 9 के समक्ष अपनी प्रारंभिक शिकायत (प्रदर्श पी-11) में कही गई बातों को नकार दिया है, और यह साबित करने के लिए कोई अन्य साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्त ने कोई मांग की थी, तो अ.सा. 1 के साक्ष्य और प्रदर्श पी-11 की अंतर्वस्तु पर इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता कि उपरोक्त सामग्री अभियुक्त द्वारा कथित रूप से की गई मांग का प्रमाण प्रस्तुत करती है। अतः, हमारा यह अभिमत है कि विद्वान विचारण न्यायालय और साथ ही उच्च न्यायालय का अभियुक्त द्वारा की गई कथित मांग को सिद्ध मानना सही नहीं था। उपलब्ध एकमात्र अन्य सामग्री अभियुक्त के कब्जे से पावडरयुक्त करेंसी नोटों की बरामदगी है। वास्तव में, ऐसा आधिपत्य स्वयं अभियुक्त द्वारा स्वीकार किया गया है। मांग के प्रमाण के बिना अभियुक्त से करेंसी नोटों का मात्र आधिपत्य और बरामदगी धारा 7 के अधीन अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। उपरोक्त निष्कर्ष धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध के संबंध में भी निर्णायक होगा, क्योंकि अवैध परितोषण की मांग के किसी भी प्रमाण के अभाव में, किसी मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए भ्रष्ट या अवैध साधनों का उपयोग या लोक सेवक के रूप में पद का दुरुपयोग स्थापित नहीं माना जा सकता है।

9. जहाँ तक अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत अनुज्ञेय उपधारणा का संबंध है, ऐसी उपधारणा केवल धारा 7 के अधीन अपराध के संबंध में की जा सकती है, न कि अधिनियम की धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराधों के लिए। किसी भी स्थिति में, अवैध परितोषण की स्वीकृति साबित होने पर ही अधिनियम की धारा 20 के अधीन यह उपधारणा की जा सकती है कि ऐसा परितोषण किसी शासकीय कार्य को करने या करने से विरत रहने के लिए प्राप्त किया गया था। अवैध परितोषण की स्वीकृति का प्रमाण तभी मान्य हो सकता है जब मांग का प्रमाण उपलब्ध हो। चूँकि वर्तमान प्रकरण में इसका अभाव है, अतः वे प्राथमिक तथ्य जिनके आधार पर धारा 20 के अधीन विधिक उपधारणा की जा सकती है, पूरी तरह से अनुपस्थित हैं।"

14. आगे, (2015) 10 एससीसी 152 (पी. सत्यनारायण मूर्ति विरुद्ध जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य) के प्रकरण में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"22. अधिनियम की धारा 7 और 13 के अनिवार्य पूर्व-अपेक्षित तत्वों को समझने के लिए इस न्यायालय द्वारा हाल ही में किए गए एक प्रतिपादन, बी. जयराज विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य, (2014) 13 एससीसी 55 में स्पष्ट शब्दों में यह रेखांकित किया गया है कि मांग के प्रमाण के बिना किसी अभियुक्त से करेंसी नोटों का मात्र आधिपत्य और बरामदगी, अधिनियम की धारा 7 के साथ-साथ धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध



स्थापित नहीं करेगी। यह प्रतिपादित किया गया है कि अवैध परितोषण की मांग के किसी भी प्रमाण के अभाव में, किसी मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए भ्रष्ट या अवैध साधनों का उपयोग या लोक सेवक के रूप में पद का दुरुपयोग साबित नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार, मांग के प्रमाण को अधिनियम की धारा 7 और 13 के अधीन अपराध के लिए एक अपरिहार्य अनिवार्यता और एक व्यापक अधिदेश माना गया है। जहाँ तक अधिनियम की धारा 20 का संबंध है, जो उसमें परिकल्पित उपधारणा की अनुमति देती है, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहाँ यह केवल धारा 7 के अधीन अपराध तक विस्तारणीय है न कि धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराधों के लिए, वहीं यह किसी आधिकारिक कार्य को करने या करने से विरत रहने के लिए अवैध परितोषण की स्वीकृति के प्रमाण पर भी निर्भर है। इस बात पर बल दिया गया था कि अवैध परितोषण की स्वीकृति का ऐसा प्रमाण केवल तभी मान्य हो सकता है जब मांग का प्रमाण हो। स्वतःसिद्ध रूप से, यह अभिनिर्धारित किया गया कि मांग के प्रमाण के अभाव में, अधिनियम की धारा 20 के अधीन ऐसी विधिक उपधारणा भी उद्भूत नहीं होगी।

23. इस प्रकार, अवैध परितोषण की मांग का प्रमाण, अधिनियम की धारा 7 और 13(1) (घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध का मूल तत्व है और इसकी अनुपस्थिति में, निस्संदेह उससे संबंधित आरोप असफल हो जाएंगे। मांग के प्रमाण के बिना, अवैध परितोषण के रूप में कथित तौर पर किसी राशि की मात्र स्वीकृति या उसकी बरामदगी, स्वतः अधिनियम की इन दो धाराओं के अधीन दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। इसके परिणामस्वरूप, अवैध परितोषण की मांग को साबित करने में अभियोजन की असफलता घातक होगी और अधिनियम की धारा 7 या 13 के अधीन अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से राशि की मात्र बरामदगी उसे दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी।"

15. (2015) 11 एससीसी 314 (सी. सुकुमारन विरुद्ध केरल राज्य) के प्रकरण में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:

"13. पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत उपर्युक्त परस्पर विरोधी विधिक तर्कों और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के संदर्भ में, हमने अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित आरोप पर तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों का परीक्षण किया है। इस न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(घ) के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए वादों की शृंखला में निरंतर यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियुक्त द्वारा अवैध परितोषण की मांग किया जाना, अधिनियम के प्रावधानों के अधीन अपराध गठित करने के लिए एक अनिवार्य शर्त है। इस प्रकार, शिकायतकर्ता अ.सा.2 से अवैध परितोषण की स्वीकृति के संबंध में, अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित आरोप को साबित करने का भार अभियोजन पर है।"



"16. बी. जयराज (पूर्वोक्त) और पी. सत्यनारायण मूर्ति (पूर्वोक्त) के प्रकरणों के निर्णयों को दोहराते हुए, पुनः (2016) 3 एससीसी 108 (कृष्ण चंद्र विरुद्ध दिल्ली राज्य) के प्रकरण में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया:"

"35. यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(1)(घ) सहपठित धारा 13(2) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अभियुक्त को दोषसिद्ध करने हेतु रिश्त की राशि की मांग किया जाना अनिवार्य शर्त है। इसी विधिक सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा बी. जयराज विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य, (2014) 13 एससीसी 55, ए. सुबेर विरुद्ध केरल राज्य, (2009) 6 एससीसी 587 और पी. सत्यनारायण मूर्ति विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य, (2015) 10 एससीसी 152 के प्रकरणों में अभिनिर्धारित किया गया है, जिन पर अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उचित रूप से अवलंब लिया गया है।"

कण्डिका 39 में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा आगे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:

"39. उपरोक्त कारणों के आलोक में, इस प्रकरण में विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय, दोनों का दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि दोनों न्यायालयों ने अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता जय भगवान (अ.सा.2) से अवैध परितोषण की मांग के पहलू पर अभियोजन के साक्ष्यों का अवलंब लिया है, जबकि इस संबंध में कोई सारभूत साक्ष्य मौजूद नहीं है और अपीलार्थी को उसके विरुद्ध विरचित आरोपों के लिए त्रुटिपूर्ण रूप से दोषसिद्ध किया गया था। अभियोजन अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता जय भगवान (अ.सा.2) से रिश्त की राशि मांगे जाने के तथ्य को साबित करने में असफल रहा है, जो कि उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(1)(घ) सहपठित धारा 13(2) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध करने हेतु एक अनिवार्य शर्त है। इस प्रकार, उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और आदेश [कृष्ण चंद्र विरुद्ध दिल्ली राज्य, 2014 एससीसी आनलाइन दि. 2312] न केवल त्रुटिपूर्ण है, बल्कि विधिक त्रुटि से भी ग्रसित है और इसलिए, अपास्त किए जाने योग्य है।"

17. हाल ही में, (2021) 3 एससीसी 687 (एन. विजयाकुमार विरुद्ध तमिलनाडु राज्य) के प्रकरण में, सी.एम. गिरीश बाबू (पूर्वोक्त) और बी. जयराज (पूर्वोक्त) के निर्णयों को दोहराते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:

"26. यह भी समान रूप से सुस्थापित है कि मात्र बरामदगी अपने आप में अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन के आरोप को साबित नहीं कर सकती। इस संबंध में इस न्यायालय के सी.एम. गिरीश बाबू विरुद्ध सी.बी.आई., (2009) 3 एससीसी 779 और बी. जयराज विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य, (2014) 13 एससीसी 55 के निर्णयों का संदर्भ लिया जा



सकता है। इस न्यायालय के उक्त निर्णयों में, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन प्रकरण पर विचार करते हुए यह दोहराया गया है कि आरोप साबित करने के लिए, यह युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने स्वेच्छा से उस धन को रिश्वत जानते हुए स्वीकार किया था। अवैध परितोषण की मांग के प्रमाण के अभाव में, करेंसी नोटों का मात्र आधिपत्य या बरामदगी ऐसा अपराध गठित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। उक्त निर्णयों में यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिनियम की धारा 20 के अधीन उपधारणा भी तभी की जा सकती है जब अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति साबित हो जाए। यह भी काफी हद तक सुस्थापित है कि आपराधिक न्यायशास्त्र में निर्दोषता की प्रारंभिक उपधारणा विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति से दोगुनी हो जाती है।

27. बी. जयराज विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य, (2014) 13 एससीसी 55 के निर्णय की सुसंगत कण्डिकाएँ 7, 8 व 9 निम्नानुसार हैं: (एससीसी पृष्ठ 58-59)

"7. जहाँ तक धारा 7 के अधीन अपराध का संबंध है, यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि अवैध परितोषण की मांग उक्त अपराध के गठन हेतु अनिवार्य शर्त है। जब तक यह युक्तियुक्त संदेह से परे साबित न हो जाए कि अभियुक्त ने स्वेच्छा से उस धन को रिश्वत जानते हुए स्वीकार किया था, तब तक मात्र करेंसी नोटों की बरामदगी धारा 7 के अधीन अपराध गठित नहीं कर सकती। उपर्युक्त स्थिति को इस न्यायालय के कई निर्णयों में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है। उदाहरण के तौर पर, सी.एम. शर्मा विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य, (2010) 15 एससीसी 1 और सी.एम. गिरीश बाबू विरुद्ध सी.बी.आई., (2009) 3 एससीसी 779 के निर्णयों का संदर्भ लिया जा सकता है।"

8. वर्तमान प्रकरण में, जहाँ तक अभियुक्त द्वारा मांग किए जाने का संबंध है, शिकायतकर्ता ने अभियोजन के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है। अभियोजन ने उस समय उपस्थित किसी भी अन्य साक्षी का परीक्षण नहीं किया है जब शिकायतकर्ता द्वारा कथित रूप से अभियुक्त को धन सौंपा गया था, ताकि यह सिद्ध किया जा सके कि यह अभियुक्त द्वारा की गई किसी मांग के अनुसरण में था। जब शिकायतकर्ता ने स्वयं एलडब्लू 9 के समक्ष अपनी प्रारंभिक शिकायत (प्रदर्श पी-11) में कही गई बातों को नकार दिया है, और यह साबित करने के लिए कोई अन्य साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्त ने कोई मांग की थी, तो अ.सा. 1 के साक्ष्य और प्रदर्श पी-11 की अंतर्वस्तु पर इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता कि उपरोक्त सामग्री अभियुक्त द्वारा कथित रूप से की गई मांग का प्रमाण प्रस्तुत करती है। अतः, हमारा यह अभिमत है कि विद्वान विचारण न्यायालय और साथ ही उच्च न्यायालय का अभियुक्त द्वारा की गई कथित मांग को सिद्ध मानना सही नहीं था। उपलब्ध एकमात्र अन्य सामग्री अभियुक्त के कब्जे से पावडरयुक्त करेंसी नोटों की बरामदगी



है। वास्तव में, ऐसा आधिपत्य स्वयं अभियुक्त द्वारा स्वीकार किया गया है। मांग के प्रमाण के बिना अभियुक्त से करेंसी नोटों का मात्र आधिपत्य और बरामदगी धारा 7 के अधीन अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। उपरोक्त निष्कर्ष धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराध के संबंध में भी निर्णायक होगा, क्योंकि अवैध परितोषण की मांग के किसी भी प्रमाण के अभाव में, किसी मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए भ्रष्ट या अवैध साधनों का उपयोग या लोक सेवक के रूप में पद का दुरुपयोग स्थापित नहीं माना जा सकता है।

9. जहाँ तक अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत अनुज्ञेय उपधारणा का संबंध है, ऐसी उपधारणा केवल धारा 7 के अधीन अपराध के संबंध में की जा सकती है, न कि अधिनियम की धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन अपराधों के लिए। किसी भी स्थिति में, अवैध परितोषण की स्वीकृति साबित होने पर ही अधिनियम की धारा 20 के अधीन यह उपधारणा की जा सकती है कि ऐसा परितोषण किसी शासकीय कार्य को करने या करने से विरत रहने के लिए प्राप्त किया गया था। अवैध परितोषण की स्वीकृति का प्रमाण तभी मान्य हो सकता है जब मांग का प्रमाण उपलब्ध हो। चूँकि वर्तमान प्रकरण में इसका अभाव है, अतः वे प्राथमिक तथ्य जिनके आधार पर धारा 20 के अधीन विधिक उपधारणा की जा सकती है, पूरी तरह से अनुपस्थित हैं। इस न्यायालय द्वारा अपनाया गया उपरोक्त दृष्टिकोण अपीलार्थी के प्रकरण का पूर्ण समर्थन करता है। अभियोजन की ओर से परीक्षित मुख्य साक्षियों के बयानों में हमारे द्वारा ऊपर नोट किए गए विरोधाभासों के आलोक में, हमारा यह मत है कि अपीलार्थी द्वारा रिश्वत की राशि और सेलफोन की मांग और उसकी स्वीकृति, युक्तियुक्त संदेह से परे साबित नहीं होती है। अभिलेख पर उपलब्ध ऐसे साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज की गई दोषमुक्ति एक "संभावित दृष्टिकोण" है, अतः उच्च न्यायालय का निर्णय [तमिलनाडु राज्य विरुद्ध एन. विजयाकुमार, 2020 एससीसी आनलाइन एमएडी 7098] अपास्त किए जाने योग्य है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के अधीन दोषसिद्धि अभिलिखित करने से पूर्व, न्यायालयों को साक्ष्यों के सूक्ष्म परीक्षण में अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। एक बार भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के अधीन दोषसिद्धि दर्ज हो जाने पर, यह सेवा पर पड़ने वाले गंभीर परिणामों के अतिरिक्त समाज में व्यक्ति पर एक सामाजिक कलंक भी लगाता है। साथ ही, यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि विचारण न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण है या नहीं, इसके लिए कोई निश्चित सिद्धांत नहीं हो सकता है और प्रत्येक प्रकरण का निर्णय अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, उसके अपने गुणों-दोषों के अनुसार किया जाना चाहिए।"



12. वर्तमान प्रकरण में, यह एक स्वीकृत स्थिति है कि अभियुक्त/अपीलार्थी देना बैंक, लहुद के शाखा प्रबंधक के रूप में कार्यरत था। दिनांक 30.01.2003 को, शिकायतकर्ता ने स्वयं स्वीकार किया कि उसने बैंक से ऋण लिया था। उसने आगे यह कथन किया कि वह अभियुक्त/अपीलार्थी द्वारा समय-समय पर मांगी गई मार्जिन मनी का भुगतान करता रहा था। शिकायतकर्ता ने यह भी स्वीकार किया कि उसके पिता ने पूर्व में देना बैंक से ऋण लिया था, जिसका पुनर्भुगतान नहीं किया गया था।

13. गजेन्द्र मुदलियार (अ.सा.-7) ने शिकायतकर्ता लखनलाल सेन (अ.सा.-3) के ऋण संबंधी दस्तावेज प्रस्तुत किए, जिन्हें प्रदर्श पी/66 और प्रदर्श पी/67 के रूप में चिह्नित किया गया। उसने बचाव पक्ष के इस सुझाव को स्वीकार किया कि ₹60,000/- का ऋण स्वीकृत किया गया था, जिसमें 20% मार्जिन मनी अंशदान की आवश्यकता थी, और इसमें मार्जिन मनी के भीतर 5% सब्सिडी शामिल थी, जो अधिकतम ₹7,500/- की सीमा के अधीन थी (अनुज्ञेय सीमा 15% होने के नाते)। उसने आगे यह स्वीकार किया कि ऋणग्रहीता के लिए प्रत्येक किश्त के साथ मार्जिन मनी जमा करना आवश्यक है।

14. अभिलेख से यह परिलक्षित होता है कि शिकायतकर्ता लखनलाल सेन ने दिनांक 18.01.2003 को ₹2,000/-, दिनांक 20.01.2003 को पुनः ₹2,000/-, और दिनांक 25.01.2003 को ₹1,000/- जमा किए थे।

15. इस न्यायालय ने, **दत्तात्रेय मौखरिवाले (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में, कण्डिकाएँ 18 व 19 में सुसंगत टिप्पणियाँ की हैं, जिन्हें निम्नानुसार उद्धृत किया जाता है:-

“18. यह ऐसा प्रकरण है जहाँ अपीलार्थी ने राशि की स्वीकृति से इनकार नहीं किया है, किंतु उसका बचाव यह है कि उसने यह राशि शिकायतकर्ता से अगले ही दिन उसके बैंक खाते में जमा करने के लिए प्राप्त की थी। शिकायतकर्ता ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया कि घटना के समय अपीलार्थी ने उसे पे-स्लिप भरने के लिए कहा था, इसलिए वह पे-स्लिप भर रहा था और उसी समय ट्रैप पार्टी पहुँच गई। शिकायतकर्ता ने पे-स्लिप (प्रदर्श पी/8) में अपने हस्ताक्षर होने की बात भी स्वीकार की है, अतः यह अपीलार्थी का एक तर्कसंगत बचाव है।

19. **जी.वी. नंजुदैया विरुद्ध राज्य (दिल्ली प्रशासन), 1987 पूरक एससीसी 266** के प्रकरण में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया था कि रिश्वत लेने के आरोप पर अन्य भौतिक परिस्थितियों के साथ विचार किया जाना चाहिए। मांग को निर्णात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करके साबित किया जाना चाहिए। जब यह तथ्य कि शिकायतकर्ता राशि के बारे में जानता था, अभियुक्त द्वारा छिपाया नहीं गया था, तब इस न्यायालय ने शिकायतकर्ता के अभियुक्त से मिलने के आरोप पर अविश्वास जताया और रिश्वत देने के समय अजनबियों की उपस्थिति को अस्वाभाविक माना गया।”



16. वर्तमान प्रकरण में भी, अभियुक्त ने राशि प्राप्त करने की बात स्वीकार की है; यद्यपि, उसका निरंतर बचाव यह रहा है कि उक्त राशि शिकायतकर्ता से मार्जिन मनी के रूप में प्राप्त की गई थी। अभिलेख पर ऐसा कोई भी निश्चयक या विश्वसनीय साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे यह स्थापित हो सके कि अभियुक्त द्वारा कभी भी किसी अवैध परितोषण की मांग की गई थी। शिकायतकर्ता ने स्वयं यह कथन किया है कि उसने राशि का भुगतान मार्जिन मनी के रूप में किया था और अभियुक्त ने उसी प्रयोजनार्थ इसकी मांग की थी। इन परिस्थितियों में, अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किया गया बचाव एक तर्कसंगत और युक्तियुक्त स्पष्टीकरण प्रतीत होता है। आपराधिक न्यायशास्त्र का यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि जहाँ अभियोजन के लिए अपने प्रकरण को समस्त युक्तियुक्त संदेहों से परे साबित करना आवश्यक है, वहीं बचाव पक्ष को केवल एक संभावित या तर्कसंगत संस्करण प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। वर्तमान प्रकरण में, शिकायतकर्ता द्वारा अपनी मुख्य-परीक्षण और प्रति-परीक्षण में दी गई स्वीकृतियाँ स्वयं बचाव पक्ष के इस संस्करण का समर्थन करती हैं कि भुगतान मार्जिन मनी के रूप में किए गए थे। परिणामस्वरूप, अभियोजन कथित अपराध के आवश्यक घटकों को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करने में असफल रहा है।

17. पूर्वगामी विश्लेषण के आलोक में और अभियुक्त/अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों को युक्तियुक्त संदेह से परे स्थापित करने में अभियोजन की असफलता को दृष्टिगत रखते हुए, यह अपील स्वीकार किए जाने योग्य है और एतद्द्वारा स्वीकार की जाती है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 27.12.2007 को पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी को उसके विरुद्ध विरचित आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है।

18. चूंकि अपीलार्थी के जमानत पर होने की सूचना है, अतः भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 481 के प्रावधानों को दृष्टिगत रखते हुए, अपीलार्थी को निर्देशित किया जाता है कि वह संबंधित न्यायालय के समक्ष तत्काल ₹25,000/- की राशि का व्यक्तिगत बंधपत्र और उतनी ही राशि की दो विश्वसनीय प्रतिभूतियाँ प्रस्तुत करे, जो छह महीने की अवधि के लिए प्रभावशील रहेगी। साथ ही, यह वचनबद्धता भी होगी कि इस निर्णय के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका दायर होने या अनुमति प्रदान किए जाने की स्थिति में, सूचना प्राप्त होने पर उक्त अपीलार्थी माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा।

19. इस निर्णय की प्रति के साथ विचारण न्यायालय का अभिलेख अनुपालन और आवश्यक कार्यवाही हेतु संबंधित विचारण न्यायालय को अविलंब प्रतिप्रेषित किया जाए।

सही/-
(रजनी दुबे)
न्यायाधीश



(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

